

श्रीमद्भागवत नवम स्कन्ध अध्याय 6: इक्ष्वाकु वंश

18 September 2026



पाठ से पहले एक निवेदन

श्रीमद्भागवत महापुराण के ये अध्यायवार सार गीता प्रेस भागवत को मुख्य आधार मानकर तैयार किए गए हैं। ये भागवत के अध्ययन में सहायक हैं, मूल ग्रंथ का स्थान नहीं ले सकते।

अध्ययन का मुख्य और अनुशंसित मार्ग गीता प्रेस की भागवत पुस्तक से सीधा पाठ है। यात्रा में, घर से दूर, या जब पुस्तक पास न हो, तब निरंतर अध्ययन, पुनरावृत्ति और समझ के लिए इन सारों का सहारा लिया जा सकता है।



कवचधारी और युद्ध के लिए उत्सुक, राजवीर पुरंजय एक विशाल बैल की ककुद पर सवार हैं — यह बैल स्वयं इन्द्र हैं, भगवान् के आदेश से रूप बदले हुए — दैत्यों की शक्ति भंग करने और अपने तीन प्रसिद्ध नाम अर्जित करने के लिए।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

श्रीमद्भागवत विज्ञप्ति में आपका स्वागत है — श्रीमद्भागवत महापुराण की पवित्र कथाओं एवं शिक्षाओं की एक श्रद्धापूर्ण यात्रा। नवम स्कन्ध का यह छठा अध्याय इक्ष्वाकु के प्रसिद्ध वंश को खोलता है — वह महान् सूर्यवंश जिसमें एक दिन भगवान् श्री राम प्रकट होंगे — और यह, सबसे बढ़कर, आत्म-संयम की नश्वरता और भक्ति की सुनिश्चित शरण का अध्याय है।

अध्याय-पारेचय

- ग्रन्थ: श्रीमद्भागवत महापुराण
- स्कन्ध: 9 (नवम स्कन्ध)
- अध्याय: 6 (षष्ठ अध्याय)
- अध्याय शीर्षक: इक्ष्वाकु का वंश: मान्धाता और ऋषि सौभरि
- मुख्य वक्ता: श्री शुकदेव गोस्वामी, राजा परीक्षित को कथा सुनाते हुए — सम्पूर्ण कथा सूत गोस्वामी द्वारा नैमिषारण्य में शौनक ऋषि एवं ऋषि-समुदाय को सुनाई गई
- मुख्य श्रोता: राजा परीक्षित
- मुख्य स्थल: इक्ष्वाकु वंश के राज्य; यमुना-तट पर स्थित आश्रम
- केन्द्रीय विषय: इक्ष्वाकु की सन्तति — विकुक्षि, पुरंजय, युवनाश्व एवं मान्धाता का जन्म; और ऋषि सौभरि की कथा, उनका गृहस्थ-भोग में पतन तथा अन्तिम संन्यास एवं मोक्ष
- मुख्य श्लोक-परास: नवम स्कन्ध, अध्याय 6, श्लोक 1-55
- मुख्य संस्करण: गीता प्रेस श्रीमद्भागवत महापुराण

इक्ष्वाकु का वंश

अम्बरीष के तीन पुत्र थे — विरूप, केतुमान् और शम्भु — और विरूप से यह वंश प्रषदश्व एवं रथीतर के माध्यम से आगे बढ़ा। तब शुकदेव इस महान् वंश के मूल-पुरुष की ओर मुड़े: वैवस्वत मनु की एक छोँक से एक पुत्र, इक्ष्वाकु, उनके नासिका-रन्ध्र से उत्पन्न हुआ, जिसके सौ पुत्र थे, जिनमें ज्येष्ठ विकुक्षि, निमि और दण्डक थे।

क्षुवतस्तु मनोज्ञे इक्ष्वाकुर्घ्राणतः सुतः ।

तस्य पुत्रशतज्येष्ठा विकुक्षिनिमिदण्डकाः ॥ ४ ॥

kṣuvatas tu manor jajñe ikṣvākur ghrāṇataḥ sutaḥ tasya putra-śata-jyeṣṭhā vikukṣi-nimi-daṇḍakāḥ

अर्थ: छोँकते हुए मनु से उनके नासिका-रन्ध्र से इक्ष्वाकु नामक पुत्र उत्पन्न हुआ; उसके सौ पुत्रों में ज्येष्ठ विकुक्षि, निमि और दण्डक थे। (नवम स्कन्ध, अध्याय 6, श्लोक 4)

ये पुत्र आर्यावर्त के पूर्वी, पश्चिमी, मध्य, उत्तरी एवं दक्षिणी प्रदेशों के शासक बनाए गए।

विकुक्षे और निषेद्ध हावेष्प

एक बार, पितरों के श्राद्ध के अवसर पर, इक्ष्वाकु ने अपने पुत्र विकुक्षि को आज्ञा दी कि वह पितरों को अर्पित करने योग्य मांस ले आए। राजकुमार वन गया और उपयुक्त पशुओं का आखेट किया, किन्तु थका और भूखा होने के कारण उसने लौटने से पूर्व असावधानीवश एक खरगोश का मांस खा लिया। जब शेष मांस इक्ष्वाकु के गुरु, वसिष्ठ ऋषि, के पास संस्कारित करने हेतु लाया गया, तो उन्होंने उसे दूषित एवं श्राद्ध के अयोग्य घोषित कर दिया।

अपने गुरु से पुत्र का यह कृत्य जानकर राजा ने सत्पुरुषों का आचरण त्यागने के कारण विकुक्षि को क्रोधवश देश-निकाला दे दिया। इक्ष्वाकु स्वयं, वसिष्ठ से परम तत्त्व पर संवाद करके, ज्ञानमार्ग में स्थित हो गए और देह त्यागने पर परम पद को प्राप्त हुए। तब विकुक्षि लौटा, पृथ्वी पर राज्य किया, अनेक यज्ञों द्वारा श्री हरि की आराधना की, और शशाद — “खरगोश का भक्षक” — के नाम से विख्यात हुआ।



आखेट के पश्चात् थका और भूखा राजकुमार विकुक्षि असावधानीवश पितरों को अर्पित करने योग्य एक खरगोश खा लेता है — यह भूल उसका पद छीन लेगी और उसे शशाद नाम देगी (श्लोक 7-9)।

पुरंजय, बैल का सवार

विकुक्षि का पुत्र पुरंजय था, जिसने एक ही महान् कर्म से तीन नाम अर्जित किए — इन्द्रवाह, ककुत्स्थ और पुरंजय। उन दिनों देवताओं और असुरों के बीच एक युद्ध हुआ जिसने सृष्टि को लगभग नष्ट कर दिया, और पराजित देवताओं ने पुरंजय को अपना योद्धा बनाया। उसने एक शर्त पर युद्ध करना स्वीकार किया: कि इन्द्र स्वयं उसका वाहन बनें। सृष्टि की आत्मा भगवान् विष्णु के आदेश से इन्द्र ने एक विशाल बैल का रूप धारण किया, और वीर उसकी ककुद पर चढ़ बैठा।

स सन्नद्धो धनुर्दिव्यमादाय विशिखाञ्छितान् ।
 स्तूयमानस्तमारुह्य युयुत्सुः ककुदि स्थितः ॥ १५ ॥
 तेजसाप्यायितो विष्णोः पुरुषस्य महात्मनः ।
 प्रतीच्यां दिशि दैत्यानां न्यरुणत् त्रिदशैः पुरम् ॥ १६ ॥

*sa sannaddho dhanur divyam ādāya viśikhāñ chitān stūyamānas tam āruhya yuyutsuḥ kakudi
 sthitaḥ tejasāpyāyito viṣṇoḥ puruṣasya mahātmanaḥ pratīcyāñ diśi daityānān nyaruṇat
 tridaśaiḥ puram*

अर्थ: कवच धारण किए, दिव्य धनुष एवं तीक्ष्ण बाण लेकर, और देवताओं से स्तुत होकर वह युद्ध का इच्छुक होकर बैल पर चढ़कर उसकी ककुद पर बैठ गया; परम पुरुष भगवान् विष्णु के तेज से पुष्ट होकर उसने देवताओं सहित पश्चिम दिशा में दैत्यों की नगरी को घेर लिया। (नवम स्कन्ध, अध्याय 6, श्लोक 15-16)

भगवान् के बल से पुष्ट होकर पुरंजय ने दैत्यों को तितर-बितर कर उनके लोक में खदेड़ दिया, और जीती हुई नगरी एवं उसका धन इन्द्र को लौटा दिया। इन्द्र पर सवार होने से (इन्द्रवाह), बैल की ककुद पर बैठने से (ककुत्स्थ), और शत्रु-नगरी जीतने से (पुरंजय) — ये तीनों नाम उसके हुए।

पुरंजय से धुन्धु के संहारक तक

वंश अनेन, पृथु, विश्वगन्धि, चन्द्र एवं युवनाश्व से होकर श्रावस्त तक पहुँचा, जिसने श्रावस्ती नगरी बसाई, फिर बृहदश्व एवं कुवल्याश्व तक। ऋषि उतंक को प्रसन्न करने हेतु शक्तिशाली कुवल्याश्व ने अपने इक्कीस हजार पुत्रों सहित धुन्धु नामक दैत्य का वध किया और इसीलिए धुन्धुमार — “धुन्धु का संहारक” — के नाम से विख्यात हुए — यद्यपि उसके प्रायः सभी पुत्र दैत्य के मुख से निकली अग्नि में जल गए, केवल तीन ही बचे। इन बचे हुए पुत्रों के माध्यम से वंश पुनः एक युवनाश्व नामक राजा तक पहुँचा।

युवनाश्व और मान्धाता का जन्म

यह युवनाश्व निःसन्तान था, और अपनी निराशा में वह अपनी सौ रानियों सहित एक वन-आश्रम में चला गया। वहाँ के करुणामय ऋषियों ने उसके लिए पुत्र-प्राप्ति हेतु इन्द्र को प्रसन्न करने वाला एक महान् यज्ञ किया, और रानी के पीने हेतु पवित्र मन्त्रों से एक घड़ा जल अभिमन्त्रित किया। किन्तु एक रात प्यासा राजा, यज्ञशाला में प्रवेश कर, ब्राह्मणों को सोता पाकर, अनजाने में स्वयं वह अभिमन्त्रित जल पी गया।

राजा तद् यज्ञसदनं प्रविष्टो निशि तर्षितः ।
 दृष्ट्वा शयानान् विप्रांस्तान् पपौ मन्त्रजलं स्वयम् ॥ १७ ॥

*rājā tad-yajña-sadanam praviṣṭo niśi tarṣitaḥ dṛṣṭvā śayānān viprāns tām papau mantra-jalam
 svayam*

अर्थ: रात में प्यासे राजा ने यज्ञशाला में प्रवेश कर, ब्राह्मणों को सोता देखकर, स्वयं वह मन्त्रों से अभिमन्त्रित जल पी लिया। (नवम स्कन्ध, अध्याय 6, श्लोक 27)



रात में प्यासा, निःसन्तान राजा युवनाश्व यज्ञशाला में प्रवेश करता है और ब्राह्मणों को सोता पाकर, अनजाने में वह जल पी जाता है जो उसकी रानी को पुत्र देने हेतु अभिमन्त्रित था (श्लोक 27)।

जब ब्राह्मणों ने घड़ा खाली पाया और जाना कि राजा जल पी गया है, तो उन्होंने विस्मित होकर भगवान् को प्रणाम किया, “अहो, नियति की शक्ति ही वास्तविक बल है!” समय आने पर युवनाश्व के शरीर के दाहिने भाग को फोड़कर एक पुत्र उत्पन्न हुआ। जब शिशु दूध के लिए रोया और ब्राह्मण सोचने लगे कि इसे कौन दूध पिलाएगा, तब इन्द्र ने अपनी अमृत-टपकती तर्जनी शिशु के मुख में रखकर कहा, “यह मुझे ही पिएगा” — और इसी से बालक का नाम मान्धाता पड़ा।

कं धास्यति कुमारोऽयं स्तन्ये रोरूयते भृशम् ।

मां धाता वत्स मा रोदीरितीन्द्रो देशिनीमदात् ॥ ३१ ॥

kaṁ dhāsyati kumāro 'yaṁ stanye rorūyate bhṛśam mām dhātā vatsa mā rodīr itīndro deśinīm adāt

अर्थ: “दूध के लिए इतना रोता हुआ यह बालक किसे पिएगा?” यह कहकर, “बेटा, रो मत, यह मुझे ही पिएगा,” इन्द्र ने उसे अपनी तर्जनी दी। (नवम स्कन्ध, अध्याय 6, श्लोक 31)



अपने पिता के पार्श्व से चमत्कारिक रूप से उत्पन्न शिशु मान्धाता दूध के लिए रोता है; इन्द्र स्वयं अपनी अमृत-टपकती तर्जनी उसके मुख में रखते हैं, यह कहते हुए, "यह मुझे ही पिएगा" (श्लोक 31)।

ब्राह्मणों एवं देवताओं की कृपा से युवनाश्व की मृत्यु नहीं हुई, अपितु उसी आश्रम में तपस्या द्वारा वह सिद्धि को प्राप्त हुआ। इन्द्र ने बालक को त्रसदस्यु — “दुष्टों का त्रास” — नाम भी दिया, क्योंकि रावण जैसे दुष्ट — जिन्हें बाद में इसी वंश में उत्पन्न भगवान् राम ने मारा — उससे भयभीत रहते।

मान्धाता का राज्य

अमर भगवान् के बल से सम्पन्न मान्धाता ने सात द्वीपों वाली सम्पूर्ण पृथ्वी पर एकमात्र सम्राट् के रूप में राज्य किया, यहाँ तक कि सूर्योदय से सूर्यास्त तक की समस्त भूमि उसका राज्य कहलाई। स्वयं आत्मज्ञानी होते हुए भी उसने भगवान् विष्णु की — जो समस्त देवता हैं, जो सबका स्वरूप हैं, और जो इन्द्रियातीत हैं — अनेक यज्ञों द्वारा, ब्राह्मणों को उदार दक्षिणा देकर, आराधना की। अपनी रानी बिन्दुमती से उसके तीन पुत्र हुए: पुरुकुत्स, अम्बरीष, और योगी मुचुकुन्द; तथा पचास पुत्रियाँ, जिनकी कथा अब खुलती है।

ऋषि सौभरि

मान्धाता की पचासों पुत्रियाँ एक ही पति — ऋषि सौभरि — को वरने आईं। यमुना के जल में डूबकर तीव्र तपस्या करते हुए इस वृद्ध ब्राह्मण ने एक दिन एक बड़े मत्स्य को अपनी मादा के साथ क्रीड़ा करते देखा, और उसके मन में दाम्पत्य-सुख की अभिलाषा जाग उठी। उसने मान्धाता के पास जाकर उसकी एक पुत्री माँगी। सम्राट्, इतने वृद्ध एवं झुर्रीदार ऋषि को अपनी कन्या देने में सशंकित, कूटनीतिपूर्वक बोला कि यदि कन्या अपने स्वयंवर में अपनी इच्छा से उसे वरे, तो वह उसकी है।

यमुनान्तर्जले मग्नस्तप्यमानः परन्तपः ।

निर्वृतिं मीनराजस्य दृष्ट्वा मैथुनधर्मिणः ॥ ३९ ॥

जातस्पृहो नृपं विप्रः कन्यामेकामयाचत ।

सोऽप्याह गृह्यतां ब्रह्मन् कामं कन्या स्वयंवरे ॥ ४० ॥

yamunāntar-jale magnas tapyamānaḥ param tapaḥ nirvṛtiṁ mīna-rājasya dṛṣṭvā maithuna-dharmiṇaḥ jāta-spṛho nṛpaṁ vipraḥ kanyām ekām ayācata so 'py āha gṛhyatām brahman kāmam kanyā svayamvare

अर्थ: यमुना के जल में डूबकर कठोर तपस्या करते हुए, एक श्रेष्ठ मत्स्य को अपनी मादा के साथ क्रीड़ा-सुख भोगते देखकर वह ब्राह्मण अभिलाषा से भर उठा और राजा से एक कन्या माँगी; और राजा ने कहा, “हे ब्राह्मण, यदि कन्या स्वयं अपनी इच्छा से आपको वरे, तो उसे ले लीजिए।” (नवम स्कन्ध, अध्याय 6, श्लोक 39-40)



यमुना के जल में तपस्या में गहरे लीन वृद्ध ऋषि सौभरि एक बड़े मत्स्य को अपनी मादा के साथ आनन्दपूर्वक क्रीड़ा करते देखते हैं — और उनके हृदय में दाम्पत्य-जीवन की एक भाग्य-निर्णायक अभिलाषा जाग उठती है (श्लोक 39-40)।

अप्रत्यक्ष अस्वीकृति भाँपकर, और स्वयं को अप्रतिरोध्य बनाने का संकल्प करके, शक्तिशाली ऋषि ने अपने तप-बल से स्वयं को अनुपम सौन्दर्य में रूपान्तरित कर लिया। राजकुमारियों के अन्तःपुर में प्रवेश कराए जाने पर, पचासों ने उसे चाहा और उस पर घोर विवाद किया, प्रत्येक यही आग्रह करती कि वह केवल उसी का है। तब सौभरि ने अपने अपार योग-वैभव से उनके लिए भव्य महल, उद्यान, सरोवर एवं प्रत्येक विलासिता रच दी, और अपनी पचासों पत्नियों के साथ रमण करने लगा। सम्पूर्ण पृथ्वी के सम्राट् मान्धाता तक इस गृहस्थ-वैभव को देखकर चकित रह गए और अपना राजोचित अभिमान त्याग दिया — फिर भी, घी की बूँदों से पोषित अग्नि की भाँति, सौभरि का भोग केवल बढ़ता गया और कभी तृप्त न हुआ।

सौभारे का जागरण और मोक्ष

अन्ततः, एक दिन शान्त बैठे हुए, सौभरि ने अनुभव किया कि वह कितना नीचे गिर गया है, और इस समस्त विनाश को उस एक क्षण की आसक्ति से जोड़ा जो मत्स्य को देखने से उपजी थी। उसने विलाप किया कि इतने दीर्घकाल तक साथी गई तपस्या एक असावधान संसर्ग से बह गई, और उससे एक स्पष्ट शिक्षा ली।

किन्तु सौभरि के अपने वृत्तान्त में उनके पतन का मूल मत्स्य से भी गहरा कुछ और था। वर्षों पहले, जब भगवान् विष्णु के महान् वाहन गरुड़ उसी नदी में मत्स्य-भक्षण हेतु आए थे, तब सौभरि ने अनुचित करुणावश उसी मत्स्य को शरण दे दी थी — और इस प्रकार अनजाने में एक महान् वैष्णव को उसका अधिकार नकार दिया। यही एक भक्त के चरणों में हुआ अपराध था, न कि मत्स्य की क्रीड़ा मात्र, जिसने इतने सिद्ध योगी के हृदय में भी इच्छा के प्रवेश हेतु द्वार खोल दिया (श्लोक 49)। इससे एक भक्त जो शिक्षा लेता है वह गम्भीर है: योग-सिद्धि और दीर्घ तपस्या भी सुरक्षा की गारण्टी नहीं देती; आत्मा की वास्तविक रक्षा भगवान् के भक्तों के प्रति अपराध से मुक्ति में है, क्योंकि वह शरण खोते ही कोई भी तपस्या मन को स्थिर नहीं रख सकती।

सङ्गं त्यजेत मिथुनव्रतीनां मुमुक्षुः

सर्वात्मना न विसृजेद् बहिरिन्द्रियाणि ।

एकश्चरन् रहसि चित्तमनन्त ईशे

युञ्जीत तद्व्रतिषु साधुषु चेत् प्रसङ्गः ॥ ५१ ॥

*saṅgaṁ tyajeta mithuna-vratīnāṁ mumukṣuḥ sarvātmanā na visṛjed bahir-indriyāṇi ekaś caran
rahasi cittam ananta īśe yuñjīta tad-vratīṣu sādhuṣu cet prasaṅgaḥ*

अर्थ: मोक्ष का इच्छुक व्यक्ति गृहस्थ-जीवन में लगे लोगों की संगति त्याग दे, बाह्य इन्द्रियों को कभी खुला न छोड़े, और एकान्त में अकेला विचरते हुए मन को अनन्त भगवान् में लगाए — यदि संगति चाहिए भी हो, तो केवल उनके भक्त साधुजनों की। (नवम स्कन्ध, अध्याय 6, श्लोक 51)

यह विचारकर कि एक अकेले तपस्वी से वह विवाह द्वारा “पचास” बन गया और पुत्रों द्वारा “पाँच हज़ार”, और कि उसकी इच्छाओं का अब कोई अन्त नहीं, सौभरि गृहस्थ-जीवन से विरक्त हो गया। संन्यास ग्रहण कर वह वन को चला गया; उसकी समर्पित पत्नियाँ, जो उसे अपना देवता मानती थीं, उसके पीछे चलीं। वहाँ उसने कठोर तपस्या की, स्वयं को वश में किया, और अपनी आत्मा को यज्ञ-अग्नियों सहित परमात्मा में लीन कर दिया — और उसकी पत्नियाँ, उसके आध्यात्मिक तेज से, उसी लक्ष्य को प्राप्त हुईं, जैसे ईंधन के अभाव में ठंडी पड़ी अग्नि के साथ लपटें शान्त हो जाती हैं।



अपने पतन के प्रति जागृत होकर ऋषि सौभरि अपने महलों एवं भोगों को त्यागकर तपस्या हेतु वन को चले जाते हैं, उनकी भक्त पत्नियाँ उसी मोक्ष की ओर उनके पीछे चलती हैं (श्लोक 51-54)।

इस अध्याय की प्रमुख शिक्षाएँ

1. एक क्षण की असावधानी एक महान् उत्तराधिकार नष्ट कर सकती है। विकुक्षि अपना जन्मसिद्ध अधिकार दुर्भावना से नहीं, अपितु एक पवित्र कर्म के समय की एक असावधानी से खोता है (श्लोक 6-9)।
2. वास्तविक बल भगवान् से आता है। पुरंजय दैत्यों को अपने बल से नहीं, अपितु “भगवान् विष्णु के तेज से पुष्ट होकर” जीतता है, यहाँ तक कि देवराज को ही अपना वाहन बनाकर (श्लोक 13-19)।
3. नियति सबसे छोटी घटनाओं से कार्य करती है। एक राजा की अर्धरात्रि की प्यास, गलत जल पी लेना, विश्व-शासक मान्धाता को जन्म देती है — “नियति की शक्ति ही वास्तविक बल है” (श्लोक 27-31)।
4. महान् तपस्या भी एक इच्छा के समक्ष नश्वर है। सौभरि की दीर्घ तपस्या क्रीडारत मत्स्य पर एक दृष्टि से बह जाती है; इन्द्रियाँ, एक बार भोगी जाने पर, कभी तृप्त नहीं होतीं (श्लोक 39-48)।
5. लौटने का मार्ग संन्यास और भगवान् के साथ एकान्त है। जाग उठने पर सौभरि सब कुछ त्याग देता है, एकान्त में अपना मन अनन्त भगवान् में लगाता है, और मोक्ष प्राप्त करता है — अपनी पत्नियों तक को साथ ले जाते हुए (श्लोक 51-55)।

एक श्रद्धा-चिन्तन

इस अध्याय के दो हृदय — पुरंजय और सौभरि — चुपचाप एक-दूसरे का प्रतिबिम्ब हैं। पुरंजय इसीलिए बलवान् है क्योंकि वह पूर्णतः भगवान् पर आश्रित है; देवराज पर सवार होकर भी वह अपने बल से नहीं, विष्णु के बल से लड़ता है। सौभरि तपस्या का दैत्य है, फिर भी जिस क्षण वह अपनी उपलब्धि पर आश्रित होता है और एक इच्छा को अपने पहर से निकल जाने देता है, उसके आत्म-संयम की समस्त इमारत ढह जाती है, और वह वर्षों यह खोजने में बिताता है कि कोई भी भोग बाहर मुड़े हृदय को नहीं भर सकता। उसकी कथा उसे लज्जित करने को नहीं, हमें सचेत

करने को कही गई है: आध्यात्मिक बल कभी ऐसी सम्पत्ति नहीं जिसे हम संचित कर भूल जाएँ; वह केवल तभी सुरक्षित है जब वह प्रति क्षण भगवान् में विश्राम करे। और उसका अन्त आशा से भरा है। जहाँ तक भी वह भटका, ऋषि ने अन्ततः अपना घर पा ही लिया — ईमानदार आत्म-परीक्षण, संन्यास, और अनन्त भगवान् में मन लगाने से। जिसने उसे नष्ट किया वह था आत्म-निर्भरता; जिसने उसे बचाया वह था समर्पण। यही चुनाव प्रत्येक साधक के समक्ष रखा है।

एक दैनिक श्रद्धा-अभ्यास

आज, सौभरि के कठिनाई से अर्जित ज्ञान की भावना में, अपनी इन्द्रियों पर एक मृदु पहरा रखें। एक ऐसी इच्छा या भटकाव चुनें जो आपके मन को आदतन बाहर खींचती है, और उसे पोषण देने के स्थान पर, “ॐ नमो भगवते वासुदेवाय” की प्रार्थना के साथ चुपचाप भीतर की ओर मुड़ें। कुछ मिनट शोर से दूर अकेले बिताएँ, मन को भगवान् पर विश्राम करने दें। और जब भी सम्भव हो, सौभरि के परामर्श का पालन करते हुए, उन लोगों की संगति खोजें जो भगवान् से प्रेम करते हैं — क्योंकि सत्संगति डगमगाते हृदय को केवल संकल्प-शक्ति से कहीं अधिक स्थिर करती है।

उपसंहार

नवम स्कन्ध का छठा अध्याय एक ही गम्भीर शिक्षा के साथ समाप्त होता है: महानता, चाहे शस्त्र की हो या तपस्या की, उधार का बल है। वह भगवान् में जड़ होने पर ही फलती-फूलती है और उसे अपना मान लेने के क्षण ढह जाती है — जैसा सौभरि ने अनुभव किया जब एक असावधान इच्छा ने जीवनभर की तपस्या को निगल लिया। फिर भी उनकी कथा निराशा में नहीं, आशा में समाप्त होती है: इन्द्रियाँ भोग से कभी तृप्त नहीं हो सकतीं, किन्तु भगवान् की ओर लौटता हृदय सदा अपना विश्राम पा लेता है। उचित ही है कि इसी इक्ष्वाकु वंश में स्वयं भगवान् श्री राम एक दिन अवतरित होंगे — यह प्रमाण कि यह एक शरण कभी विफल नहीं होती।

श्रीमद्भागवत का दिव्य ज्ञान हमारे हृदयों में शुद्ध भक्ति जागृत करे।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

जय श्री माधव।

सन्दर्भ एवं आभार

- मुख्य संस्करण: गीता प्रेस, श्रीमद्भागवत महापुराण (अंग्रेज़ी, सम्पूर्ण), नवम स्कन्ध, षष्ठ अध्याय, पृष्ठ 21–33।
- श्रृंखला: श्रीमद्भागवत विज़डम • बिस्वा सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट।
- पण्डित डॉ. श्री काशीनाथ मिश्र के आध्यात्मिक मार्गदर्शन एवं अनुशंसा के अनुसार प्रस्तुत।

यह लेखक के अपने शब्दों में एक मौलिक, श्रद्धापूर्ण पुनर्कथन है, जिसमें संक्षिप्त उद्धृत श्लोक देवनागरी एवं लिप्यन्तरण सहित दिए गए हैं और उनके अर्थ सारांश रूप में प्रस्तुत हैं। यह किसी एक प्रकाशक के निरन्तर अनुवाद या टीका का पुनरुत्पादन नहीं है। किसी प्रकाशक के साथ किसी सम्बद्धता या उसके अनुमोदन का दावा नहीं किया गया है।

॥ हरि ॐ तत्सत् ॥

जय श्री माधव

ऑनलाइन पढ़ें: kalkiabatara.org/hi/blog-srimad-bhagavatam-canto-9-chapter-6-line-of-ikshvaku-mandhata-and-saubhari-hi.html

श्रीमद्भागवतम् विज्ञानम् • कल्कि अवतार इंटरनेशनल • बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट

